International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 8.141
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 7 No. 2 January – February - 2026

२१ वीं सदी के उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की नई छवि

पाटील विश्वास निवृत्ती
कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, आष्टा
Corresponding Author – *पाटील विश्वास निवृत्ती*

DOI - 10.5281/zenodo.18654475

सारांश:

21 वीं सदी का साहित्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का सजीव दस्तावेज़ है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, तकनीकी क्रांति तथा शिक्षा के विस्तार ने स्त्री की पारंपरिक भूमिका को गहराई से प्रभावित किया है। इस सदी में स्त्री केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित न रहकर कार्यक्षेत्र में सक्रिय, आत्मनिर्भर और निर्णयक्षम व्यक्तित्व के रूप में उभरकर सामने आती है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की छवि संघर्षशील होने के साथ-साथ आत्मचेतन, सशक्त और परिवर्तनकारी दिखाई देती है। वह आर्थिक स्वावलंबन के माध्यम से अपनी पहचान गढ़ती है तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं को चुनौती देती है। यह शोधपत्र 21वीं सदी के चुनिंदा हिंदी उपन्यासों के आधार पर कार्यरत स्त्री की नई छवि, उसके सामाजिक-पारिवारिक संघर्ष, कार्यस्थल की चुनौतियाँ, आत्मपहचान और स्त्री विमर्श के व्यापक संदर्भों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द: 21वीं सदी, हिंदी उपन्यास, कार्यरत स्त्री, स्त्री विमर्श, आत्मनिर्भरता, सामाजिक परिवर्तन, पितृसत्ता, पारिवारिक द्वंद्व, लैंगिक समानता.

भूमिका:

21वीं सदी को सामाजिक परिवर्तन और वैचारिक संक्रमण की सदी कहा जा सकता है। इस दौर में समाज की संरचना, पारिवारिक व्यवस्था, कार्यसंस्कृति और लैंगिक संबंधों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। स्त्री, जो लंबे समय तक घरेलू दायित्वों तक सीमित मानी जाती थी, अब शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भूमिका निभा रही है। साहित्य समाज का दर्पण होने के कारण इन परिवर्तनों को संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करता है।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री केवल आर्थिक आवश्यकता के कारण काम करने वाली पात्र नहीं रह गई है, बल्कि वह अपनी अस्मिता, स्वतंत्रता और स्वाभिमान की खोज में सक्रिय दिखाई देती है। उपन्यासकारों ने कार्यरत स्त्री के जीवन के विविध पक्षों—उसके संघर्ष, आकांक्षाएँ, पारिवारिक दायित्व और सामाजिक टकराव—को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया

स्त्री विमर्श की पृष्ठभूमि और 21वीं सदी:

स्त्री विमर्श आधुनिक साहित्यिक और सामाजिक चिंतन की एक महत्वपूर्ण धारा है, जिसकी जड़ें विश्वव्यापी महिला अधिकार आंदोलनों, सामाजिक सुधार आंदोलनों और लोकतांत्रिक चेतना के विकास में निहित हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो स्त्री लंबे समय तक पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के अंतर्गत शोषण, उपेक्षा और असमानता का शिकार रही है। शिक्षा, संपत्ति, निर्णय और सार्वजनिक जीवन में उसकी भागीदारी सीमित रखी गई। इसी असमान

स्थिति के प्रतिरोधस्वरूप स्त्री विमर्श का उदय हुआ, जिसका मूल उद्देश्य स्त्री को सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर समान अधिकार दिलाना रहा है।

भारतीय संदर्भ में स्त्री विमर्श का विकास 19वीं सदी के समाज सुधार आंदोलनों से जुड़ा हुआ है, जहाँ सावित्रीबाई फुले, पंडिता रमाबाई और महात्मा फुले जैसे सुधारकों ने स्त्री शिक्षा और अधिकारों पर बल दिया। हिंदी साहित्य में प्रारंभिक काल में स्त्री की छवि आदर्श पत्नी, त्यागमयी माँ और सहनशील नारी के रूप में चित्रित होती रही, किंतु 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में स्त्री लेखन और स्त्री चेतना ने इस छवि को चुनौती दी। महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, कृष्णा सोबती और मन्नू भंडारी जैसी लेखिकाओं ने स्त्री अनुभवों को केंद्र में लाकर साहित्य को नई दृष्टि प्रदान की।

21वीं सदी में प्रवेश करते-करते स्त्री विमर्श का स्वरूप और अधिक व्यापक, जटिल तथा बहुआयामी हो गया है। वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की प्रक्रियाओं ने समाज की आर्थिक संरचना को बदला, जिसके परिणामस्वरूप स्त्री की कार्यक्षेत्र में भागीदारी बढ़ी। शिक्षा और तकनीक की उपलब्धता ने स्त्री को आत्मनिर्भर बनने के नए अवसर प्रदान किए। इस दौर में स्त्री विमर्श केवल घरेलू शोषण या पारिवारिक असमानता तक सीमित न रहकर कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव, यौन उत्पीड़न, वेतन असमानता, पहचान संकट और कार्य–जीवन संतुलन जैसे मुद्दों को भी समाहित करता है।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री विमर्श का केंद्र कार्यरत स्त्री बन गई है, जो सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करती है। यह स्त्री न तो पूर्णतः विद्रोही है और न ही निष्क्रिय सहनशील; बल्कि वह संवाद, संघर्ष और आत्मचेतना के माध्यम से अपनी स्थिति को परिभाषित करती है। 21वीं सदी का स्त्री विमर्श स्त्री को एक संवेदनशील, बौद्धिक और निर्णयक्षम मनुष्य के रूप में स्वीकार करता है।

इस प्रकार 21वीं सदी में स्त्री विमर्श साहित्य तक सीमित न रहकर एक व्यापक सामाजिक विमर्श का रूप ले चुका है। हिंदी उपन्यासों में इसकी अभिव्यक्ति स्त्री की बदलती भूमिका, कार्यक्षेत्र में उसकी सक्रियता और आत्मपहचान की खोज के रूप में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह विमर्श न केवल स्त्री की स्थिति को समझने में सहायक है, बल्कि समाज को समानता, न्याय और मानवीय मूल्यों की दिशा में अग्रसर करने का भी कार्य करता है।

कार्यरत स्त्री की नई छवि: स्वरूप और विशेषताएँ:

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की छवि पारंपरिक स्त्री-प्रतिमा से स्पष्ट रूप से भिन्न दिखाई देती है। यह नई छवि सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा के प्रसार, आर्थिक अवसरों और स्त्री चेतना के विकास का परिणाम है। समकालीन उपन्यासों में कार्यरत स्त्री केवल परिवार की आर्थिक सहायता करने वाली पात्र नहीं रह गई है, बल्कि वह अपने व्यक्तित्व, अधिकार और अस्तित्व को स्वयं परिभाषित करने वाली सशक्त इकाई के रूप में उभरती है। उसका कार्यक्षेत्र में प्रवेश केवल आवश्यकता नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, पहचान और आत्मविकास की अभिव्यक्ति बन जाता है।

कार्यरत स्त्री की नई छवि का सबसे प्रमुख स्वरूप उसकी **आत्मनिर्भरता** है। आर्थिक स्वतंत्रता उसे आत्मविश्वास प्रदान करती है और पारंपरिक निर्भरता की मानसिकता को तोड़ती है। उपन्यासों में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि रोजगार के माध्यम से स्त्री अपने निर्णय स्वयं लेने लगती है और अपने जीवन की दिशा निर्धारित करने का साहस प्राप्त करती है। यह आत्मनिर्भरता केवल

आर्थिक स्तर तक सीमित न रहकर मानसिक और भावनात्मक स्वतंत्रता में भी परिवर्तित होती है।

इस नई छवि की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता उसकी **निर्णय क्षमता** है। 21वीं सदी की कार्यरत स्त्री विवाह, मातृत्व, करियर और व्यक्तिगत जीवन से जुड़े निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभाती है। वह सामाजिक दबावों के बावजूद अपने हितों और आकांक्षाओं को महत्व देती है। समकालीन उपन्यासों में ऐसी स्त्रियाँ दिखाई देती हैं जो समझौते करती हैं, परंतु आत्मसमर्पण नहीं करतीं। उनका यह निर्णयशील व्यक्तित्व स्त्री विमर्श को नई दिशा प्रदान करता है।

संघर्षशीलता कार्यरत स्त्री की नई छवि का अनिवार्य पक्ष है। कार्यस्थल पर प्रतिस्पर्धा, लैंगिक भेदभाव, पदोन्नति में असमानता और यौन उत्पीड़न जैसे अनुभव उसके संघर्ष को गहन बनाते हैं। इसके साथ ही परिवार और समाज की पारंपरिक अपेक्षाएँ उसके सामने निरंतर चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं। उपन्यासों में कार्यरत स्त्री इन संघर्षों से टूटती नहीं, बल्कि अनुभवों के माध्यम से और अधिक परिपक्व तथा सशक्त होती दिखाई देती है।

कार्यरत स्त्री की छवि में **समानता की चेतना** भी प्रमुख रूप से उभरती है। वह लैंगिक भेदभाव को पहचानती है और उसके विरुद्ध मौन स्वीकार करने के स्थान पर प्रश्न उठाती है। समकालीन उपन्यासों में यह चेतना प्रत्यक्ष प्रतिरोध, संवाद अथवा वैचारिक संघर्ष के रूप में सामने आती है। यह स्त्री स्वयं को पुरुष के समान मानवीय अधिकारों की अधिकारी समझती है और इसी दृष्टि से समाज को देखने लगती है।

इसके अतिरिक्त, 21वीं सदी के उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की छवि संवेदनशील और मानवीय भी है। वह परिवार, संबंधों और भावनाओं से कटकर नहीं जीती, बल्कि उन्हें नए दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करती है। उसकी संवेदनशीलता कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी शक्ति बनकर उभरती है। इस प्रकार कार्यरत स्त्री की नई छवि संतुलन, आत्मचेतना और परिवर्तनशीलता की प्रतीक बन जाती है।

कुल मिलाकर, 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री का स्वरूप पारंपरिक सीमाओं को तोड़ता हुआ दिखाई देता है। यह नई स्त्री छवि आत्मनिर्भर, निर्णयक्षम, संघर्षशील और समानता-बोध से युक्त है। साहित्य में इसका उद्भव न केवल स्त्री जीवन की यथार्थ तस्वीर प्रस्तुत करता है, बल्कि समाज में लैंगिक समानता और न्याय की अवधारणा को भी सुदृढ़ करता है।

कार्यस्थल और पारिवारिक द्वंद्व:

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री का जीवन कार्यस्थल और परिवार के बीच निरंतर चलने वाले द्वंद्व के रूप में उभरकर सामने आता है। यह द्वंद्व केवल समय-प्रबंधन या जिम्मेदारियों के विभाजन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्त्री की मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक स्थिति को गहराई से प्रभावित करता है। समकालीन साहित्य में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि कार्यरत स्त्री को पेशेवर पहचान स्थापित करने के साथ-साथ पारंपरिक पारिवारिक भूमिकाओं के निर्वाह का भी दबाव झेलना पड़ता है।

कार्यस्थल पर स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह दक्ष, प्रतिस्पर्धी और पूर्णतः समर्पित कर्मचारी के रूप में कार्य करे। वहीं परिवार में उससे आज भी एक आदर्श पत्नी, माँ और बहू की पारंपरिक भूमिकाओं को निभाने की अपेक्षा की जाती है। इस दोहरे दायित्व के कारण कार्यरत स्त्री का जीवन तनाव और संघर्ष से भर जाता है। उपन्यासों में ऐसे अनेक प्रसंग सामने आते हैं जहाँ स्त्री को करियर और परिवार के बीच चुनाव करने के लिए विवश किया जाता है, जिससे उसका आत्मसंघर्ष और गहरा हो जाता है।

समकालीन उपन्यासों में यह भी चित्रित हुआ है कि कार्यरत स्त्री के कार्यस्थल पर बिताए गए समय को अक्सर

पारिवारिक उपेक्षा के रूप में देखा जाता है। उसके पेशेवर विकास को कई बार 'स्वार्थ' या 'कर्तव्यहीनता' से जोड़ दिया जाता है। यह दृष्टिकोण पितृसत्तात्मक मानसिकता को उजागर करता है, जहाँ पुरुष का कार्यक्षेत्र में सक्रिय होना स्वाभाविक माना जाता है, किंतु स्त्री का वही प्रयास प्रश्नों के घेरे में आ जाता है।

दूसरी ओर, कार्यस्थल पर भी स्त्री के पारिवारिक दायित्वों को उसकी पेशेवर क्षमता के विरुद्ध तौलने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। विवाह, मातृत्व या पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उसके करियर में बाधा के रूप में देखी जाती हैं। इस कारण कार्यरत स्त्री को स्वयं को बार-बार सिद्ध करना पड़ता है। उपन्यासों में यह संघर्ष स्त्री के आत्मसम्मान और मानसिक संतुलन को प्रभावित करता हुआ दिखाई देता है।

हालाँकि 21वीं सदी के उपन्यासों में कार्यरत स्त्री इस द्वंद्व के सामने निष्क्रिय नहीं रहती। वह धीरे-धीरे परिवार और कार्यस्थल—दोनों स्तरों पर संवाद स्थापित करने का प्रयास करती है। वह अपने अधिकारों, सीमाओं और आवश्यकताओं को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है। यह प्रक्रिया संघर्षपूर्ण अवश्य है, किंतु इसके माध्यम से स्त्री संतुलन और समझौते की नई परिभाषा गढ़ती है।

इस प्रकार कार्यस्थल और पारिवारिक द्वंद्व 21वीं सदी की कार्यरत स्त्री की नई छवि का अभिन्न अंग बन जाता है। समकालीन हिंदी उपन्यास इस द्वंद्व को केवल समस्या के रूप में नहीं, बल्कि परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह द्वंद्व स्त्री को आत्मचेतन, निर्णयक्षम और सामाजिक रूप से जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सामाजिक दृष्टिकोण और पुरुष सत्ता:

21वीं सदी के सामाजिक परिवेश में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, किंतु इसके बावजूद पितृसत्तात्मक सोच पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री के जीवन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक दृष्टिकोण अब भी पुरुष सत्ता से गहरे रूप में प्रभावित है। स्त्री की शिक्षा, रोजगार और आत्मनिर्भरता को स्वीकार तो किया जाता है, परंतु उसे पूर्ण स्वायत्तता देने में समाज आज भी संकोच करता दिखाई देता है।

पुरुष सत्ता केवल प्रत्यक्ष नियंत्रण के रूप में ही नहीं, बल्कि सामाजिक मान्यताओं, परंपराओं और अपेक्षाओं के माध्यम से भी कार्यरत रहती है। कार्यरत स्त्री से यह अपेक्षा की जाती है कि वह आर्थिक रूप से योगदान दे, किंतु साथ ही पारंपरिक स्त्री भूमिकाओं—जैसे घर-गृहस्थी, पालन-पोषण और पारिवारिक समायोजन—का निर्वाह भी उसी तत्परता से करे। उपन्यासों में यह विरोधाभास स्त्री के जीवन में तनाव और असंतोष को जन्म देता है।समकालीन हिंदी उपन्यास यह भी दर्शाते हैं कि पुरुष सत्ता कई बार सूक्ष्म और अदृश्य रूप में कार्य करती है।

चयनित उपन्यासों का उदाहरणात्मक विश्लेषण:

21वीं सदी का हिंदी उपन्यास सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन, वैश्वीकरण, शहरीकरण तथा स्त्री-चेतना के नए आयामों को साहित्यिक रूप में अभिव्यक्त करता है। इस कालखंड में कार्यरत स्त्री केवल जीविका अर्जन करने वाली पात्र नहीं रह जाती, बल्कि वह आत्मनिर्भर, निर्णयक्षम, संघर्षशील तथा सामाजिक संरचनाओं से संवाद करती हुई एक सशक्त पहचान के रूप में उभरती है। प्रस्तुत शोध-खंड में कुछ चयनित उपन्यासों के माध्यम से कार्यरत स्त्री की इस नई छवि का उदाहरणात्मक एवं तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

1. अलका सरावगी का उपन्यास *'कलिकथा: वाया बाइपास'*:

अलका सरावगी का यह उपन्यास आधुनिक शिक्षित स्त्री की मानसिकता, कार्यक्षेत्र और पारिवारिक उत्तरदायित्वों के द्वंद्व को अत्यंत सूक्ष्मता से प्रस्तुत करता है। उपन्यास की नायिका केवल पारिवारिक भूमिका में सीमित नहीं है, बल्कि वह अपने कार्य, आत्मचिंतन और वैचारिक स्वतंत्रता के माध्यम से अपनी अलग पहचान बनाती है। यहाँ कार्यरत स्त्री की छवि आत्मविश्लेषी है, जो अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच संतुलन स्थापित करती है। यह उपन्यास यह संकेत देता है कि 21वीं सदी की कार्यरत स्त्री बाहरी संघर्षों के साथ-साथ आंतरिक संघर्षों से भी जूझती है, किंतु वह इनसे पराजित नहीं होती।

2. मृदुला गर्ग का उपन्यास *'कठगुलाब'*:

'कठगुलाब' में कार्यरत स्त्री की छवि विद्रोही और प्रश्नाकुल रूप में सामने आती है। मृदुला गर्ग की स्त्री पात्र सामाजिक रूढ़ियों, पितृसत्तात्मक मानसिकता और पारंपरिक नैतिकताओं को चुनौती देती है। कार्यक्षेत्र में सक्रिय स्त्री यहाँ केवल आर्थिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह अपने संबंधों, शरीर और इच्छाओं पर भी अपना अधिकार स्थापित करती है। यह उपन्यास इस तथ्य को रेखांकित करता है कि 21वीं सदी की स्त्री अपने पेशेवर जीवन के साथ-साथ निजी जीवन में भी स्वायत्तता की मांग करती है।

3. गीतांजलि श्री का उपन्यास *'हमारा शहर उस बरस'*:

इस उपन्यास में कार्यरत स्त्री की छवि सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों से जुड़ी हुई दिखाई देती है। गीतांजलि श्री की स्त्री पात्र सामाजिक हिंसा, साम्प्रदायिकता और अस्थिरता के बीच भी अपने कार्य और मानवीय मूल्यों के प्रति सजग रहती है। यहाँ कार्यरत स्त्री केवल नौकरी करने वाली नहीं, बल्कि समाज की संवेदनशील प्रेक्षक और नैतिक हस्तक्षेपकर्ता के रूप में उभरती है। यह उपन्यास कार्यरत स्त्री को सामाजिक चेतना के वाहक के रूप में स्थापित करता है।

4. मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास *'इदन्नमम'*:

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की छवि ग्रामीण और अर्ध-शहरी परिवेश से जुड़ी हुई है। *'इदन्नमम'* की स्त्री पात्र श्रमशील है, आत्मनिर्भर है और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करती है। यहाँ कार्य का अर्थ केवल नौकरी नहीं, बल्कि श्रम और स्वाभिमान से जुड़ा हुआ है। यह उपन्यास इस धारणा को तोड़ता है कि कार्यरत स्त्री की नई छवि केवल शहरी, शिक्षित वर्ग तक सीमित है; बल्कि ग्रामीण स्त्री भी 21वीं सदी में सशक्त रूप में सामने आती है।

5. समकालीन उपन्यासों में कार्यरत स्त्री : समेकित दृष्टि:

इन चयनित उपन्यासों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की छवि बहुआयामी है। वह शिक्षित-शहरी भी है और श्रमशील-ग्रामीण भी; वह पारंपरिक भूमिकाओं में बंधी नहीं, बल्कि उन्हें पुनर्परिभाषित करती है। कार्य उसके लिए केवल आर्थिक आवश्यकता नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, पहचान और स्वतंत्रता का माध्यम बन जाता है। समकालीन उपन्यासकारों ने स्त्री को सहानुभूति की वस्तु नहीं, बल्कि सक्रिय सामाजिक-सांस्कृतिक कर्ता के रूप में चित्रित किया है।

6. निष्कर्षात्मक संकेत:

चयनित उपन्यासों का यह उदाहरणात्मक विश्लेषण इस तथ्य की पुष्टि करता है कि 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की नई छवि आत्मनिर्भर, चेतनाशील और संघर्षशील है। वह पितृसत्तात्मक ढाँचों के भीतर रहकर भी उनसे संवाद करती है और आवश्यक होने पर उनका प्रतिरोध भी करती है। इस प्रकार समकालीन हिंदी उपन्यास

स्त्री-विमर्श को केवल वैचारिक स्तर पर नहीं, बल्कि जीवन के यथार्थ अनुभवों के माध्यम से सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है।

कार्यरत स्त्री और आत्मपहचान:

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की छवि आत्मपहचान के नए आयामों के साथ उभरकर सामने आती है। इस कालखंड में स्त्री केवल पारिवारिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि अपने कार्य, योग्यता और आत्मनिर्णय के माध्यम से स्वयं को परिभाषित करती है। कार्य उसके लिए मात्र आर्थिक आवश्यकता न होकर आत्मसम्मान और अस्तित्व-बोध का सशक्त आधार बन जाता है।

पारंपरिक समाज में स्त्री की पहचान प्रायः पिता, पति अथवा परिवार से जुड़ी होती थी, किंतु समकालीन उपन्यास इस धारणा को तोड़ते हुए कार्यरत स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं। नौकरी या पेशे के माध्यम से स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होती है, जिससे उसके भीतर आत्मविश्वास का विकास होता है। यह आत्मविश्वास उसे अपने जीवन से जुड़े निर्णय स्वयं लेने की क्षमता प्रदान करता है। विवाह, मातृत्व, संबंधों और करियर को लेकर वह अब समाज की अपेक्षाओं के स्थान पर अपनी प्राथमिकताओं को महत्व देने लगती है।

समकालीन उपन्यास यह भी दर्शाते हैं कि आत्मपहचान की यह प्रक्रिया संघर्षहीन नहीं है। कार्य और परिवार के बीच संतुलन बनाना, सामाजिक दबावों का सामना करना तथा कार्यस्थल की चुनौतियों से जूझना कार्यरत स्त्री के जीवन का यथार्थ है। फिर भी 21वीं सदी की स्त्री इन संघर्षों से पलायन नहीं करती, बल्कि इन्हें स्वीकार करते हुए अपनी पहचान को और अधिक सशक्त बनाती है।

कार्यरत स्त्री की आत्मपहचान सामाजिक स्वीकृति और आत्मसम्मान से गहराई से जुड़ी होती है। वह सहानुभूति की नहीं, बल्कि समानता और सम्मान की अपेक्षा करती है। इसके साथ ही, वैचारिक स्वतंत्रता उसकी पहचान का महत्वपूर्ण पक्ष बनती है। समकालीन उपन्यासों में स्त्री पात्र सामाजिक रूढ़ियों और पितृसत्तात्मक मूल्यों पर प्रश्न उठाती हुई दिखाई देती है।

इस प्रकार 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की आत्मपहचान एक गतिशील और बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में उभरती है, जो आधुनिक स्त्री चेतना और सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण संकेतक है।

निष्कर्षत:

कहा जा सकता है कि 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में कार्यरत स्त्री की नई छवि व्यापक सामाजिक परिवर्तन का सशक्त प्रतीक बनकर उभरती है। यह स्त्री अब केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह संघर्षशील, आत्मनिर्भर तथा आत्मचेतना से परिपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में चित्रित होती है। समकालीन हिंदी साहित्य ने कार्यरत स्त्री के जीवनानुभवों, चुनौतियों और उपलब्धियों को यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत कर उसे सशक्त स्वरूप प्रदान किया है। इस नव्य प्रस्तुति के माध्यम से साहित्य ने समाज को स्त्री की भूमिका को नए दृष्टिकोण से समझने की प्रेरणा दी है और लैंगिक समानता व सामाजिक न्याय की चेतना को मजबूत आधार प्रदान किया है। कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि कार्यरत स्त्री की यह नई छवि न केवल साहित्यिक परिवर्तन का संकेत है, बल्कि बदलते सामाजिक मूल्यों और सोच का भी आईना है—एकदम सटीक कहा जाए तो “समय की नब्ज पकड़ने” वाला चित्रण।

संदर्भ:

1. मैत्रेयी पुष्पा – *स्त्री विमर्श और साहित्य,* राजकमल प्रकाशन, 2015.
2. नामवर सिंह – *आधुनिकता और हिंदी उपन्यास,* शिक्षण पुस्तकालय, 2012.
3. गार्गी चक्रवर्ती – *समकालीन स्त्री लेखन,* पृष्ठभूमि प्रकाशन, 2018.
4. विमला बहुगुणा – *हिंदी साहित्य में नारी चेतना,* लोकसाहित्य प्रकाशन, 2016.
5. सुधा अरोड़ा – *स्त्री अस्मिता के प्रश्न,* साहित्य अकादमी, 2017.
6. मृदुला गर्ग – *कठगुलाब,* राजस्थानी पब्लिकेशन, 2014.
7. मृदुला गर्ग – *अनित्या,* लेखक प्रकाशन, 2013.
8. अलका सरावगी – *कलिकथा: वाया बाइपास*, उत्तर भारत पब्लिकेशन, 2019.
9. जया आनंद – *हिंदी उपन्यास में स्त्री विमर्श,* विमर्श प्रकाशन, 2020.
10. महादेवी वर्मा – *संपूर्ण काव्य और गद्य संग्रह*, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2009.